समस्याएँ आज की समाधान कल के

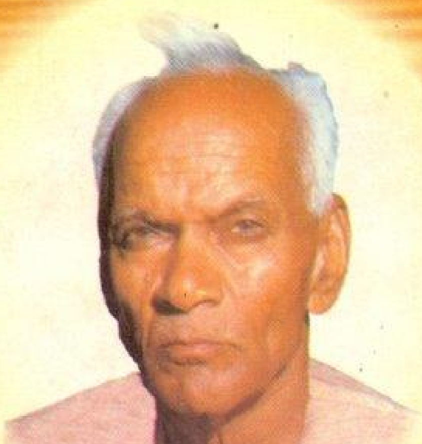

— श्रीराम शर्मा आचार्य

समस्याएँ आज की समाधान कल के

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०– २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१५ मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

प्रगति से पहले अवगति की रोकथाम

सड़क पर चलने वाला कोई पगला, राहगीरों पर ईंट पत्थरों की मारामार मचा सकता है और कितने ही सिर और कितने ही पंजर तोड़–फोड़ कर रख सकता है । यह सरल है । कठिनाई तब पड़ती है, जब उस टूट–फूट को नए सिरे से ठीक करना पड़ता है । पिछले दिनों लोकमानस पर दुहरा उन्माद चढ़ा है । एक वैज्ञानिक उपलब्धियों का और दूसरा प्रत्यक्ष को, तत्काल को ही सब कुछ मान बैठने का । उस गहरी खुमारी और लड़खड़ा देने वाली बदहवासी में यह सोचते भी नहीं बन पड़ा कि इस विक्षिप्तता से उन्मत्त होकर, जो कर गुजरने का आवेश चढ़ दौड़ा है, उसका क्या परिणाम होगा ? अनाचारी इसी उन्मादग्रस्त स्थिति में कुछ भी कर गुजरते हैं और पछताते तब हैं, जब कुकृत्यों के दुष्परिणाम भयानक प्रतिक्रिया के साथ सामने आ खड़े होते हैं ।

इन दिनों भी ऐसा ही कुछ घटित हुआ है । जिन पर जीवन निर्भर रहता है, उन्हीं को बीन–बीन कर चकनाचूर करके रख देने की 'सनक' लोगों पर चढ़ी है, फलस्वरूप यह संकट आ खड़ा हुआ है कि अगले दिनों जीवित तक रह सकना कैसे बन पड़ेगा ? विपन्न विग्रह के घटाटोपों से कैसे निपटा जाएगा ? प्रकृति के साथ क्रूर मजाक करने पर उसका प्रतिफल तो भुगतना ही पड़ेगा । अग्नि में हाथ डालने पर झुलसने से कैसे बचा जाए ? इन दिनों अगणित संकटों और झंझटों का सामना करना पड़ रहा है । उनका निमित्त कारण अपना भटकाव ही है, जिसे कोई चाहे तो अनर्थ–आचरण भी कह सकता है । गलती करने वाले पर ही यह दायित्व भी लद जाता है कि वही सुधारे भी । उल्टी चाल चलने वाले को अपनी रीति–नीति सुधारने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं ।

अगली शताब्दी में उज्ज्वल भविष्य की संरचना करने के लिए कुछ तो नया भी खरीदना पड़ेगा, परसाथ ही यह भी देखना होगा कि

किन कारणों से विग्रह हुआ और उनका सुधार बन पड़ा या नहीं । यदि इतना भर मंथन कर लिया जाए, तो समस्या का अधिकांश हल अनायास ही निकल सकता है ।

उदाहरण के लिए आधी जनसंख्या इन दिनों प्रायः अनुत्पादक स्थिति में रह रही है । दिन गुजारने के लिए घरेलू काम धंधों में ही प्रायः सारी जिन्दगी गुजर जाती है । उसका न तो पुरुष जितना आर्थिक उत्पादन दीख पड़ता है और न बौद्धिक कौशल । घर से बाहर बिखरी हुई असंख्य समस्याओं के समाधान में उसका योगदान नहीं के बराबर है । अशिक्षा, गरीबी, प्रतिगामिता आदि से निपटने में भी उसका योगदान नहीं बन पड़ता । समुन्नत देशों की महिलाएँ अपने अपने देशों की प्रगति में लगभग आधा योगदान देने में श्रेय प्राप्त कर रही हैं । इस विपन्नता को मूक दर्शक की तरह देखते नहीं रहा जा सकता है । नारी को जितनी क्षमता ईश्वर ने प्रदान की है, उसको समुन्नत और सुव्यवस्थित कर सकें, तो देखते–देखते अपना कौशल, उत्पादन और पुरुषार्थ दूना हो सकता है, अन्य उपायों से दूनी प्रगति करना सरल नहीं है ।

दूसरी बड़ी समस्या इन दिनों आवश्यक प्रजनन को रोकने की है । अब से दो हजार वर्ष पहले संसार भर की आबादी तीस करोड़ के लगभग थी । अब वह ६०० सौ करोड़ हो गई है, बीस गुनी अधिक, अब कुछ ही दिनों में उतनी भर से २० को काम चलाना पड़ रहा है । यह उपक्रम रुका नहीं है, वह गुणन चक्र के अनुसार दो से चार, चार से आठ, आठ से सोलह का क्रम बनाते हुए संतुलन को अस्त–व्यस्त करने की सीमा तक पहुँचने जा रहा है । यदि कामुकता की दुष्प्रवृत्ति को निरुत्साहित कर, प्रजनन पर रोकथाम हो सके, तो डूबने वालों को तिनके का सहारा मिल सकता है । यह क्रम यदि घटने की राह पकड़ ले, तो फिर अनेकानेक विग्रहों और संकटों से सहज छुटकारा मिल सकता है ।

अपव्यय इन दिनों चरम सीमा पर है । नशेबाजी से, फैशन–

परस्ती से, आभूषणों की सजधज से, शेखी–खोरी जताने के लिए ओढ़े गए खर्चीले विवाहों से कितना धन और समय बर्बाद होता है, यह किसी से छिपा नहीं है । शृंगारिक सजधज से न केवल पैसा बर्बाद होता है वरन् कामुक उत्तेजना को भी प्रश्रय मिलता है, व्यभिचार का पथ प्रशस्त होता है । धूमधाम वाली, दहेज और जेवर की भरमार वाली शादियाँ समाज की आर्थिक कमर बेतरह तोड़–मरोड़ कर रखे दे रही हैं । इन दुराग्रहों से पीछा छुड़ाने में क्या किसी को बड़ा मोर्चा डालना पड़ेगा ? सिर पर छाई हुई अवांछनीयता को उतार फेंकना किसी के लिए भी कठिन क्यों होना चाहिए ? सादा जीवन उच्च विचार वाला उपक्रम अपनाने से किसी पर क्या इतना बोझ लदता है, जिसे कठिन या असंभव माना जाए ? अपनी इस भूल का सुधार कर लेने भर से दुखदायी दरिद्रता से आधा छुटकारा मिल सकता है ।

अमीरी जताने का उद्धत अहंकार यदि काबू में रहे, तो धन–कुबेर बनने की हविस क्यों सभी पर बेतरह छाई रहे ? औसत नागरिक स्तर का निर्वाह करने में क्या किसी के बड़प्पन में कमी आएगी ? वरन् सच तो यह है कि उसे अपेक्षाकृत अधिक नीतिवान, अधिक प्रसन्न और अधिक संयमी उदारचेता कहलाने का अवसर मिलेगा । जो पैसा और समय तथाकथित बड़प्पन का लबादा ओढ़ने में खर्च होता है, सादगी द्वारा उसे बचाया जा सके, तो उस बचत से ही पिछड़े हुओं का इतना काम चल सकता है कि कहीं किसी को भी गई–गुजरी स्थिति में पड़े रहने के लिए बाधित न होना पड़े ।

सेना में सभी सैनिकों को एक जैसी सुविधा मिलती है, इससे न किसी की इज्जत घटती है और न बढ़ती है । समानता प्रकारांतर से शालीनता का ही एक लक्षण है । संतों की जमात एक जैसा ही निर्वाह करती है । उनमें से कोई सदस्य असाधारण सजधज अपनाए तो उसकी प्रतिष्ठा घटेगी ही, बढ़ेगी नहीं । कोई समय था, जब शान, ठाठ–बाट के साथ जुड़ती थी, पर अब राजा सामंतों की जैसा स्वांग बनाने वाले को नाटक का नट होने जैसी ही भर्त्सना मिलेगी ।

साम्यवादी–समाजवादी विचारधारा ने लोकमानस को ऐसा ढाल दिया है कि असाधारण अमीरों पर आए दिन ढेरों लांछन लगते हैं । उन्हें चोर, बेईमान कहने तक में लोग नहीं चूकते, भले ही उनकी कमाई औचित्य की मर्यादा में ही आती हो । ऐसों पर निष्ठुरता और संकीर्ण–स्वार्थपरता का आरोप तो लग ही जाता है । निश्चित रूप से इस प्रकार दौलत फूँकना रोका जा सकता है और उतने भर से असंख्यों को ऊँचा उठने का अवसर मिल सकता है ।

यदि इस प्रकार उद्धत प्रदर्शनों को रोका जा सके, तो खाई और टीलों की ऊबड़–खाबड़ जमीन समतल दीखने लगे और उस पर अच्छे खासे उद्यान या भवन खड़े हो सकें । संपन्नता का उपयोग उद्धत प्रयोजनों के अतिरिक्त ही कुछ अच्छा हो पाता है ।

अर्थ व्यवस्था में कौटुम्बिक उत्तराधिकार का उतना ही औचित्य है कि असमर्थों को उससे निर्वाह मिलता रहे । व्यावसायिक पूँजी के रूप में भी उसे मान्यता मिल सकती है, पर कमाऊ उत्तराधिकारियों के सिर पर पूर्वजों की कमाई को लाद दिया जाए, इसका क्या औचित्य हो सकता है ? कानून किनने बनाए और किनके लिए बनाए–यह बहुत ही विवादास्पद है, पर न्याय यही कहता है कि जमा भले ही किसी ने किया हो, उसका उपयोग वहीं होना चाहिए, जहाँ उसकी नितान्त आवश्यकता है । ऐसे कुछ ही सुधार यदि कर लिए जाएँ, तो संसार पर छाए हुए संकटों में से अधिकांश का तो अनायास ही समाधान हो सकता है ।

शिक्षा ही नहीं, विद्या भी

समस्याओं में एक और पक्ष ऐसा है, जो तुरंत समाधान चाहता है । शिक्षा की बहुत थोड़ी आवश्यकता ही स्कूल–कालेजों के माध्यम से पूरी हो पाती है । एक शब्द में इसे यों भी कहा जा सकता है कि इससे लिखा–पढ़ी, हिसाब–किताब जैसे ही काम चल पाते हैं । यह भी हो सकता है कि उनके मस्तिष्क में वे जानकारियाँ भी कुछ

अधिक मात्रा में भर गई हों, जो आमतौर से व्यावहारिक जीवन में कभी काम नहीं आतीं । इतिहास, भूगोल, रेखागणित आदि ऐसे ढेरों विषय हैं, जो निजी जीवन में कदाचित् ही कभी कुछ काम आते हों ? किंतु प्रचलन यही है कि स्कूलों की कक्षा पास होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेने पर ही किसी को शिक्षित कहलाने का अधिकार मिलता है । यद्यपि उसमें काम का कम और बेकाम का अधिक होता है । नौकरी न लगने पर तथाकथित शिक्षित लोग अपने और दूसरों के लिए समस्या बनते हैं । शारीरिक श्रम के काम करने में उन्हें बेइज्जती मालूम पड़ती है । आदत भी छूट जाती है । ऐसी दशा में शिक्षित बेकार अपने और दूसरों के लिए अधिक गंभीर समस्या बनते हैं । इसकी तुलना में अशिक्षितों को अपेक्षाकृत कम परेशानी का सामना करना पड़ता है ।

शिक्षा की गुण गरिमा जितनी भी गाई जाए, उतनी ही कम है । विद्या को ज्ञानचक्षु की उपमा दी गई है । उसके अभाव में मनुष्य अंधों के समतुल्य माना जाता है । विद्या को सर्वोपरि धन माना गया है । उससे अमृत की प्राप्ति होती है, ऐसा कहा जाता रहा है । पर उसमें यह सभी विशेषताएँ तब उत्पन्न होती हैं, जब उसके द्वारा मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव का, व्यक्तित्व का विकास हो, प्रतिभा को समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने में सहायता मिले । अन्यथा भ्रष्ट चिंतन और दुष्ट आचरण से मनुष्य और भी अधिक खतरनाक होता जाता है । उसे ब्रह्म-राक्षस की संज्ञा दी जाती है ।

इस तथ्य पर नए सिरे से विचार करना पड़ेगा कि शिक्षा के नाम पर ऐसे ही कुछ अगड़म-बगड़म चल रहा है या उसमें व्यक्तित्व को निखारने वाले, व्यावहारिक सभ्यता के ढांचे ढालने वाले, प्रतिभा को प्रखर बनाने वाले लक्ष्यों का किसी स्तर तक समावेश बन पड़ रहा है ? इन्हीं के आधार पर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को समुन्नत बनाने का अवसर मिलता है । यदि मानवी गरिमा के अनुरूप विभूतियों का समावेश न हो सके तो मात्र बहुज्ञ होने के नाम पर,

उद्धत अहमन्यता से संबंधित दुर्गुण संजो लेने पर कोई अशिक्षित से भी गया–गुजरा सिद्ध हो सकता है । वह ऐसे दुःस्वभाव का आदी बन जाएगा, जिससे हर किसी का, हर प्रकार अहित ही हो सकता है । शिक्षा की इन रचनात्मक और ध्वंसात्मक दोनों ही शक्तियों से हमें भली प्रकार अवगत होना चाहिए ।

समाज को इच्छानुरूप ढालने वाले मूर्धन्यों ने अपने समाज की शिक्षा पर पूरी तरह ध्यान केंद्रित किया है । जर्मनी, रूस, चीन, इसराइल, यूगोस्लावाकिया जैसे नवोदित देशों ने शिक्षा को इच्छित ढांचे में ढालने के उपरांत ही यह सफलता पाई, जिसके फलस्वरूप वे अपने देशवासियों का चिंतन, चरित्र एवं स्वभाव–अभ्यास ऐसा ढाल सके, जिसके सहारे सर्वसाधारण में नए सिरे से नई जीवट उत्पन्न कर सके ।

अपने देश में इस प्रकार की शिक्षा की कमी सर्वत्र अनुभव की जा रही है, पर जिनके हाथ में नीति निर्धारण एवं व्यवस्था संचालन की क्षमता है, उन्हें वर्तमान परिस्थितियों में किसी बड़े परिवर्तन के लिए सहमत कर सकना कठिन दीखता है । ऐसी दशा में एक ही विकल्प शेष रह जाता है कि देश के मनीषियों, विचारशीलों को इस अभाव की पूर्ति का भार अपने जिम्मे लेना चाहिए और समझदार लोगों के सहयोग से इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाना चाहिए । परमार्थ भी जीवन का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष है । उसे और भी अधिक उभारा जा सकता है और व्यक्तित्वों में उत्कृष्ट प्रगतिशीलता बढ़ाने के लिए केंद्रीभूत किया जा सकता है ।

प्राचीनकाल में शिक्षा उसे कहते थे, जो निर्वाह साधनों को जुटाने और उनका सही प्रयोग कर सकने की विधा समझाकर अपना प्रयोजन पूरा करती थी । इसी के साथ वह प्रकृति संपदा और चेतना के क्षेत्र में प्राणियों तथा मनुष्य की रीति नीति में कायाकल्प जैसा परिवर्तन उत्पन्न करती थी । इसे जागरूकता, विचारशीलता या विवेकनिष्ठा भी कहा जा सकता है ।

नशेबाजों को अर्धमूर्छित कहा जाता है । यों उनके हाथ–पांव, आँख, कान आदि अवयव तो साधारण रीति से काम करते दिखाई पड़ते हैं, पर विवेक बुद्धि काम नहीं करती । सभ्यता एवं सुसंस्कारिता से संबंधित जागरूकता को वे भुला बैठते हैं । ऐसी ही स्थिति प्रायः अनगढ़ जनों की होती है । मानवी गरिमा के अनुरूप चिंतन किस प्रकार करना चाहिए ? अपना चरित्र स्तर कैसा रखना चाहिए ? व्यवहार में शालीनता का समुचित समावेश किस प्रकार रखना चाहिए ? वह सब औचित्य वे भूल जाते हैं । उनींदों से खुमारीग्रस्तों से जैसी भूलें होती रहती हैं, वैसी ही वे आए दिन पग–पग पर करते रहते हैं ।

आत्म विस्मृति का लांछन ऐसा है, जिसके रहते मनुष्यों को नरपशु, वनमानुष आदि के नाम से ही जाना जा सकता है । मनुष्यता, सभ्यता एवं सुसंस्कारिता से आरंभ होती है । यही है अपने स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव के संबंध में बरती जाने वाली जागरूकता । इसके अभाव में मनुष्य गई–गुजरी स्थिति में ही पड़ा रहता है । प्रगति का द्वार तो उसके लिए बंद ही रहता है । सुविकसित जनों की तुलना में उसकी रीति नीति उपहासास्पद, हेय एवं तिरस्कृत ही बनी रहती है ।

हमें यह मानकर चलना चाहिए कि इन दिनों सर्वत्र भौतिकवाद का ही बोलबाला है । मनुष्य अपने आपको मन समेत इंद्रियों का समुच्चय शरीर मानता है । इसीलिए उसकी जो कुछ इच्छा, अभिलाषा, आकांक्षा, चेष्टा होती है, वह शरीर की परिधि तक ही सीमित होकर रह जाती है । पढ़ना, करना और सोचना उसी छोटी परिधि में सीमाबद्ध रहता है । आत्मा भी कोई चीज है, इस क्षेत्र में उससे कुछ सोचते, करते भी नहीं बन पड़ता । वस्तुतः यह कार्य विद्या के क्षेत्र में आता है । सभ्यता शरीर को और सुसंस्कारिता मन को प्रभावित करती तथा परिष्कृत बनाती है । यह पक्ष उपेक्षित है । जब उसकी महत्ता, आवश्यकता तक समझी न जा सकेगी तो फिर कोई कुछ करेगा भी क्यों ?

शिक्षा को लोक व्यवहार का, उपार्जन प्रक्रिया का, सुविधा संग्रह का एक प्रयोजन भर माना जा सकता है । इतने भर से किसी का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता और सज्जनता–शालीनता की विद्या के अभाव में मनुष्य का भावनात्मक स्तर पशुवत् ही बनकर रह जाता है ।

विद्या की एक सांगोपांग रूपरेखा बनानी पड़ेगी और उसे जन–जन के मन–मन में प्रविष्ट करने की इतनी बड़ी इतनी व्यापक योजना बनानी पड़ेगी, जो स्कूली शिक्षा की कमी पूरी करने में समर्थ हो सके । इसके लिए विचारशील भाव–संपन्नों का समय, श्रम, मनोयोग एवं पुरुषार्थ प्रायः उतनी ही मात्रा में नियोजित करना पड़ेगा, जितना कि सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों में शरीर साधन जुटाने के लिए शिक्षा के नाम पर लगाया जाता है । इन्हीं योजनाओं को बड़ी उमंगों के साथ, बड़ी तैयारियों का समन्वय करते हुए व्यापक स्तर पर क्रियान्वित करना इन्हीं दिनों अभीष्ट है ।

तथ्यों को समझें दृश्यों में न उलझें

भगवान ने अपने बाद चेतना का दूसरा स्तर मनुष्य का ही बनाया है । मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेंद्रियाँ इतनी समर्थ हैं कि उसे सृष्टि का सर्व समर्थ प्राणी कहा जाना उचित ही है । यह उसके काय कलेवर की विशेषता है । सचेतन अदृश्य सत्ता का, यदि लेखाजोखा लिया जाए, तो प्रतीत होगा कि न केवल भौतिक जगत पर, वरन् अदृश्य क्षेत्र के रूप में जाने जाने वाले सूक्ष्म जगत पर भी उसका असाधारण अधिकार है । दृश्य और अदृश्य दोनों ही लोकों पर उसका अधिकार होने से मानवी सत्ता को सुर दुर्लभ भी कहा जाता है । किसी ने सच ही कहा है कि मनुष्य भटका हुआ देवता है । उसके अंतराल में दैवी शक्तियों का तत्वतः समग्र निवास है; पर दृश्य जगत के जाल जंजाल में स्वयं को भूल जाने के कारण ठोकरें खाता और जहाँ–तहाँ भटकता है ।

गड़बड़ी वहाँ से प्रारंभ होती है, जहाँ वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर अपने को कलेवर मात्र समझता है । वाहन को अधिपति मान बैठता है और गोबर भरी मशक में अपने को समाया भर मानता है । दर्पण में अपनी छवि तो होती है, व्यक्तित्व नहीं । शरीर कुछ तो है, पर सब कुछ नहीं । उसकी इच्छा, आवश्यकता को भी पूरा किया जाना चाहिए, पर मात्र उसी के लिए सब कुछ निछावर कर देना भूल है । अच्छा होता सवार और घोड़े का संबंध भी समझ लिया होता । भेड़ों के झुण्ड में पले सिंह ने अपने को भेड़ मान लिया था । यह कथा सुनी तो बहुतों ने है, पर यह अनुभव कोई बिरले ही करते हैं कि उपहासास्पद कथा–उक्ति सीधी अपने ही ऊपर लागू होती है ।

परमाणु मोटी दृष्टि से एक अत्यंत ही छोटा, अदृश्य स्तर का, प्रकृति का अत्यंत कनिष्ठ घटक मात्र मालूम पड़ता है । इतने पर भी वस्तुस्थिति यह है कि उसमें एक समूचे ग्रह पिण्ड जितनी शक्ति भरी पड़ी है । मनुष्य असंख्य परमाणुओं, जीवाणुओं, रसायनों, विद्युत आवेशों का भंडार है । प्रायः साढ़े पांच फुट ऊंचे, ६० किलोग्राम औसत भार के इस काय–कलेवर में संभवतः उतने ही गोलक हो सकते हैं, जितने कि इस समूचे ब्रह्मांड में तारे ग्रह–उपग्रह आदि हैं । इस समूची शक्ति का अनुमान लगाया और आंकलन किया जाए, तो उसे अकल्पनीय ही कहना होगा । एक औसत मनुष्य प्रायः उतना ही हो सकता है, जितना कि यह समूचा ब्रह्मांड प्रकृति संपदा से भरा पड़ा है ।

ब्रह्मांड को 'महतो महीयान्' कहा गया है, पर पिण्ड को 'अणोरणीयान्' । यदि आकार की न्यूनाधिकता पर ध्यान न दिया जाए, तो मानवी सत्ता भी परमात्म सत्ता के समतुल्य जा पहुँचती है । भगवान को जितने भी प्रमुख अवतार लेने पड़े हैं, वे सभी मनुष्य आकृति में ही हुए हैं । स्वर्गीय देवता अपनी जगह विराजमान हो सकते हैं, पर धरती पर देवताओं की भी कभी कमी

नहीं रही । महामानवों के रूप में उनके अस्तित्व का परिचय समय समय पर मिलता रहा । मनुष्य ही देव के स्वरूप में सृजन और दैत्य के रूप में ध्वंस के ऐसे कृत्य दिखाते रहे हैं, जिनकी विशालता और विभीषिका पर ध्यान देते ही दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है । क्षुद्रता का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्हें इसी कारण देखा जाता है कि वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है । यदि मनुष्य ''आत्म-बोध'' प्राप्त कर ले और समझ ले कि मैं कौन हूँ ? क्या हूँ ? और क्या कर सकता हूँ ? तो समझना चाहिए कि उसे क्षुद्र से महान, नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम बनने से कोई नहीं रोक सकता ।

आँखों पर जिस रंग का चश्मा लगा लिया जाए, समस्त संसार उसी रंग का दीख पड़ता है । संसार के दृश्य कैसे ही क्यों न हों, पर यदि अपनी आँख की पुतली काम करना बंद कर दे, तो फिर सर्वत्र अंधकार ही दीख पड़ेगा । कान बहरे हो जाएँ, तो कहीं किसी शब्द का अस्तित्व न रहेगा । अपने दृष्टिकोण के अनुरूप सारा वातावरण दीख पड़ता है । हर व्यक्ति का अपना संसार अलग से रचा हुआ है और वह उसी में विचरण करता है । स्वर्ग और नरक दोनों ही मात्र अनुभूतियाँ हैं, जिनको हर व्यक्ति इच्छानुसार अपने लिए विनिर्मित करता एवं बदलता रहता है ।

यह संसार जड़ पदार्थों का बना है, उसमें भले-बुरे जैसा कहीं कुछ नहीं है । जड़ पदार्थों का अपना स्वरूप भर है । उनके सुख और दु:ख की अनुभूति तो मनुष्य की खुद की गढ़ी हुई है । पाप-पुण्य पदार्थ तो कैसे करेंगे ? उनका सदुपयोग, दुरुपयोग ही पाप-पुण्य की अनुभूति गढ़ते हैं । इंजन कितना ही समर्थ या कीमती क्यों न हो, उसे चलाने की क्षमता तो सजीव मनुष्य में ही होती है । रेलगाड़ी अपने बलबूते किसी निर्दिष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकती । अधिक से अधिक कोई दुर्घटना करने की निमित्त भर बन सकती है । संसार भर का वातावरण जड़ पदार्थों से विनिर्मित होने के कारण अपने बलबूते कुछ भरा बुला नहीं कर सकता । सचेतन सत्ता का

प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करने वाला मनुष्य ही हर परिस्थिति के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है ।

तथ्यों को समझते हुए हमें जैसा भी कुछ भला बुरा भविष्य विनिर्मित करना हो, उसी के अनुरूप जनमानस विनिर्मित करना चाहिए । सतयुग और कलियुग में लोगों के शरीर निर्वाह क्रम में कोई बड़ा अंतर नहीं होता, फिर भी जो जमीन आसमान जैसा अंतर दीख पड़ता है, उसका सृजनकर्ता वस्तुतः मनुष्य ही है । वह न केवल अपने भाग्य का निर्माता आप है, वरन् उसी का सामूहिक चिंतन, क्रियाकलाप, प्रवाह वैसा ही कुछ बनाकर खड़ा कर देता है, जैसा कि सोचा या चाहा गया था । हमें मुरझाए पत्ते सींचने की योजना नहीं बनानी चाहिए, वरन् जड़ तक खाद-पानी पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

पूछा जाता है कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए क्या करना होगा ? यदि प्रश्न का सही उत्तर अपेक्षित हो, तो वह एक ही हो सकता है "दृष्टिकोण का परिवर्तन ।"

यों मन समझाने के लिए ऐसा भी कुछ सोचा जा सकता है कि प्रयत्न क्या करने होंगे ? पदार्थों के सरंजाम जुटाने में किस प्रकार के प्रयास-परिवर्तन करने होंगे ? उत्तर उन प्रश्नों के भी हो सकते हैं और कार्यक्रम तदनुरूप भी बन सकता है । योजनाएँ बनाने वाले इन्हीं गोरखधंधों को उलझाने-सुलझाने में लगे भी रहते हैं, किंतु यह शतरंज की गोटियों को इधर-उधर हटाते-उठाते रहने का मनोरंजन भर है । वस्तुतः उस सारे खेल में बाजी हारना-जीतना खिलाड़ियों की मानसिकता पर निर्भर रहता है । गोटियाँ व्यर्थ ही बदनाम होती या सम्मान पाती रहती हैं ।

मोटी बुद्धि दृश्यों, पदार्थों, घटनाओं को ही सब कुछ मानती है । चिंतन, दृष्टिकोण, उत्साह, साहस जैसी अदृश्य प्रवृत्तियों के संदर्भ में हर किसी के लिए यह अनुमान लगाना कठिन होता है कि पर्दे के पीछे काम करने वाले मदारी की उँगलियाँ ही समूचे प्रहसन की

निमित्त हैं । तमाशों का सूत्रधार तो मानसिकता का बाजीगर ही होता है । समस्याओं का वास्तविक हल उसी के हाथ है । बंदी कठपुतलियों के साथ माथा पच्ची करना कुछ अर्थ नहीं रखता । फिर भी बच्चों को चाबी के खिलौनों की हलचलें ही प्रभावित करती हैं । उन्हें यह कहाँ पता होता है कि उसके भीतर जमे हुए पुर्जे ही यह चित्र विचित्र हलचल करते हैं ।

इन विभीषिओं से कौन जूझेगा ? कैसे जूझेगा ?

प्रत्यक्ष समस्याओं में अनेक ऐसी हैं, जो देखने में अत्यंत भयावह मालूम पड़ती हैं और जिसका समाधान भी सरल नहीं दीख पड़ता । सारी दुनिया उनके कारण चिंतित है । मूर्धन्य जनों को बहुत माथा–पच्ची करने के उपरांत भी कोई हल नहीं सूझ पड़ता ।

इन समस्याओं में सर्वप्रथम है–वातावरण में सतत् घुल रहा जहर । औद्योगिक कारखाने वायु को विषमय बना रहे हैं । लगता है कि कहीं शुद्ध वायु के अभाव में घुटन से ही जीवों को दम न तोड़ना पड़े । औद्योगिक उत्पादनों के विषैले रसायन जलाशयों में बहाए जाते हैं । वही पानी घूम फिर कर पीने के काम आता है । मंद विष पीते रहने पर देर सबेर उनका प्रतिफल मरण ही हो सकता है । रासायनिक खादें और कीटनाशक विष आहार में सम्मिलित होकर स्वास्थ्य को चौपट करते रहते हैं । वायु प्रदूषण के कारण वातावरण का तापमान दिन दिन बढ़ता जाता है, विश्व का हिम भंडार पिघलाने और समुद्रों में बाढ़ आने की चुनौती देता है । पृथ्वी के ऊपर का सुरक्षा कवच भी फटता जा रहा है और खतरा बढ़ रहा है कि अंतरिंक्षीय मारक किरणें कहीं धरातल को भूनकर न रख दें ।

प्रदूषण का शोषण वृक्ष वनस्पतियों के माध्यम से होता है । उन्हें

बेतरह काटा जा रहा है । इससे धरती के रेगिस्तान बन जाने, भूमि की उर्वरता समुद्र में बहकर पहुँच जाने, भयंकर बाढ़ें आने, वर्षा का अनुपात घट जाने जैसी कितनी ही प्रकृति के कोप से उत्पन्न होने वाली विभीषिकाएँ क्रमशः निरंतर बढ़ती जा रही हैं ।

उद्योगों में कोयला, खनिज तेल आदि का इतना अधिक दोहन हो रहा है कि उस चिरसंचित भूगर्भ वैभव का अंत निकट आता जा रहा है । ईंधन के अभाव में कारखाने एवं द्रुतगामी वाहन भविष्य में कैसे चलते रहेंगे ? यह एक बड़ा प्रश्न है । फिर इसी प्रयोजन के लिए धातुएँ भी तो असाधारण मात्रा में प्रयुक्त होती हैं । उनकी खदानें भी तो सीमित हैं । जिस तेजी से उनका दोहन हो रहा है, उसे देखते हुए लगता है कि निकट भविष्य में धातुओं की उपलब्धि भी दुर्लभ हो जाएगी ।

धरती को तेजी से वनस्पति उत्पादन से छीन कर आवासीय प्रयोजन के लिए, कारखाने, दफ्तरों के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है । उपजाऊ भूमि की कमी पड़ती जाने पर पशु–पक्षियों तथा अन्य जीव जंतुओं का निर्वाह कठिन हो जाएगा और धरती का संतुलन भी गड़बड़ा जाएगा ।

पशुओं, वृक्षों और मनुष्यों के निर्वाह का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है । इन तीनों में से एक घटेगा–मिटेगा, तो शेष दो का भी सफाया हो जाएगा । वृक्षों की पत्तियों से, पशुओं के, मनुष्यों के मल–मूत्र से धरती की उर्वरता कायम रहती है और उसी के आधार पर जीवधारियों को आहार उपलब्ध होता है । बादल अपने आप बरसने का जितना उपक्रम अपनाते हैं, उससे कहीं अधिक पृथ्वी की परिस्थितियाँ उन पर बरसने का दबाव डालती हैं । यदि यह दबाव बना रहे तो जिस प्रकार रेगिस्तानों में वर्षा नहीं होती, उसी प्रकार अन्यत्र भी बूंद–बूंद पानी के लिए तरसना पड़ेगा । पानी और हवा के बिना तो जीवन थोड़े समय भी स्थिर नहीं रह सकता । फिर आहार की उपज भी नहीं हो सकती

और निर्वाह साधनों के अभाव में न मनुष्य जी सकता है और न प्राणियों, वनस्पतियों में से ही किसी का जीवन स्थिर रह सकता है । वर्तमान प्रवाह प्रचलन पूरे जोर से ऐसी ही दिशाधारा अपना रहा है, जिसके कारण भविष्य हर प्रकार अंधकारमय ही दीख पड़ता है ।

ऐसा क्यों हो रहा है ? क्यों करना पड़ रहा है ? इसके संबंध में एक बात बहुत जोर देकर कही जाती है कि मनुष्यों की जनसंख्या बेहिसाब बढ़ रही है । उनके लिए तदनुरूप ही बढ़े चढ़े साधन चाहिए । आहार, जल, मकान, कारखाने, व्यवसाय, विद्यालय, चिकित्सालय आदि अनेकों साधन चाहिए । उस संदर्भ में हाथ सिकोड़ा जाए, तो उत्पन्न होते जाने वाले मनुष्य समुदाय की व्यवस्थाएँ कैसे बनें ? मनुष्यों की अभिवृद्धि अनायास ही रुकती भी तो नहीं ।

इन दिनों एक नया व्यवसाय और जन्मा है–''युद्ध ।'' बीसवीं सदी में दो विश्वयुद्ध एवं प्रायः २०० क्षेत्रीय युद्ध हो चुके हैं । इनमें कितनी युवा शक्ति मरी, कितने परिवार अनाथ हुए, इसकी बात तो अलग, युद्ध सामग्री बनने में जो जन शक्ति, धन शक्ति, बुद्धि शक्ति लगी, उतने साधनों से इसी धरती को न जाने कितना समुन्नत बनाया जा सकता था । अभी भी जो तैयारियाँ चल रही हैं उससे प्रतीत होता है कि सृजन प्रयत्नों की तुलना में ध्वंस की तैयारियाँ कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर हैं ।

अर्थ संतुलन ऐसा गड़बड़ाया है कि गरीब अधिक गरीब और अमीर अधिक अमीर बनते जा रहे हैं । अर्थ लिप्सा में, मंडियाँ हथियाने के लिए धनाध्यक्षों की हविश अनेक प्रकार के उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद रचते हैं और उनके परिणाम स्वरूप दुःख बढ़ते चले जा रहे हैं ।

इस सबका परिणाम यह हुआ है कि जन साधारण का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य बेतरह गड़बड़ाने लगा है । दोनों ही क्षेत्रों में इतने अधिक रोग बढ़ रहे हैं कि उनके निवारण के लिए

बनने वाले चिकित्सक, आविष्कार, अस्पताल सभी बौने पड़ते जा रहे हैं । लगता है अगले दिनों पूर्ण स्वस्थ रह सकना अत्यंत कठिन हो जाएगा ।

शिक्षा का उद्देश्य नौकरी भर रह जाने से बेकारी–बेरोजगारी की बाढ़ रोक सकना कठिन हो जाएगा । मँहगी ठाठ–बाट के लिए व्याकुल बनाने वाली पढ़ाई अपना संतुलन बिठाने के लिए वेतन की ही तरह रिश्वत को भी समानांतर साधन बना रही है । बताया जाता है कि जनता की भलाई के नाम पर सरकार जो कुछ करती है उसका ८५ फीसदी नौकरशाही तंत्र पर खर्च हो जाता है । शेष १५ प्रतिशत भी उपयुक्त व्यक्तियों तक पहुँचता होगा कि नहीं, इसमें संदेह है । बिचौलिए उसमें से भी बड़ा अंश हड़प जाते हों, तो कोई आश्चर्य नहीं ।

कहने को प्रजातंत्र का प्रचलन है और सत्ता का सूत्र संचालक मतदाता माना जाता है । पर यह कोई रहस्य नहीं रहा कि मतदाता जिन विभ्रमों और दबावों के बीच रह रहा है, उसे देखते हुए उसके लिए विवेकपूर्ण निर्णय कर सकने का धरातल भी तो नहीं रह गया है । शासन संचालन को देखते हुए नए सिरे से सोचना पड़ता है कि राजतंत्र, अधिनायकवाद आदि की तुलना प्रजातंत्र को मिल भी सकती है या नहीं ?

प्रत्यक्षवाद ने आदर्शों पर से आस्थाएँ बुरी तरह डगमगा दी हैं । जैसे भी बने स्वार्थ साधन ही प्रमुख दृष्टिकोण रह गया है । मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता की चर्चा तो कहने सुनने को मिल जाती है, पर उसका व्यावहारिक प्रचलन मुश्किल से ही कहीं देखने को मिलता है । छद्म, पाखंड, प्रपंच ही भक्त और भगवान का, क्रिया–कृत्यों और धर्म–कलेवरों का रूप धारण करता जा रहा है । इन परिस्थितियों में हर सोचने वाले का मन टूटता और संदेह होता है कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना का उद्देश्य किस प्रकार, किस आधार पर पूरा हो सकेगा ?

कठिन समस्याओं के सरल समाधान

भूमि में उर्वरता की समुचित मात्रा हो, तो उस पर खेत, उद्यान आदि की विविध सुषमा–हरीतिमा उगाई जा सकती है । यदि वह ऊसर हो, नमक उगलती हो, फिर घास का एक तिनका तक जमने वाला नहीं है । भूमि से संबंधित कोई भी संपदा उपार्जित करने के लिए भूमि का सही समतल होना आवश्यक है ।

संसार में अगणित प्रकार की सुविधा संपदाओं का अभिवर्धन आवश्यक होता है । पर उसके लिए उस मानवी चेतना का स्वस्थ, समुन्नत होना आवश्यक है, जो वैभव उत्पादन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है । यदि भूमि पर, साधनों पर आधिपत्य जमा कर बैठे हुए अथवा योजनाएँ बनाने वाले लोग विकृत मस्तिष्क के होंगे तो वे कुछ बना सकना तो दूर विग्रह और ध्वंस ही खड़े करेंगे । उलझी हुई समस्याओं का समाधान तो उनसे बन ही कैसे पड़ेगा ?

इन दिनों पतन पराभव का संकट, विग्रह का वातावरण बन कर खड़े हुए अराजकता स्तर के असमंजसों की चर्चा विगत पृष्ठों पर की गयी है । इनका निवारण निराकरण इन्हीं दिनों किया जाना आवश्यक है । देर करने का समय है नहीं, अन्यथा अवसर चूकने पर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगेगा नहीं । क्षयजन्य रुग्णता को दूर करने की प्राथमिकता तो दी जाती है पर अगला कदम यही होता है कि रुग्णता से क्षीण, जर्जर काया को सही स्थिति में लाया जाए और जीवनी शक्ति को इतना बढ़ाया जाए, जिससे दुर्बलता दूर हो सके और स्वस्थ समर्थ मनुष्य की तरह जीवनयापन कर सकना संभव हो सके ।

मस्तिष्क विकृत, हृदय निष्ठुर, रक्त दूषित, पाचन अस्त–व्यस्त हो, शरीर के अंग–प्रत्यंगों में विषाणुओं की भरमार हो, तो फिर

वस्त्राभूषण की भरमार, अगर–चंदन का लेपन और इत्र–फुलेल का मर्दन बेकार है । वस्त्र आभूषण जुटा देने और तकिए के नीचे स्वर्ण मुद्राओं की पोटली रख देने से भी कुछ काम न चलेगा । जबकि स्वस्थ, सुडौल होने के कारण सुन्दर दीखने वाला शरीर गरीबी में भी हंसती–हंसाती जिंदगी जी लेता है, आए दिन सामने आती रहने वाली समस्याओं से भी निपट लेता है और किसी न किसी प्रकार, कहीं न कहीं से प्रगति के साधन जुटा लेता है । वस्तुतः महत्व साधनों या परिस्थितियों का नहीं, व्यक्तिगत स्वस्थता, प्रतिभा और दूरदर्शिता का है । वह सब उपलब्ध रहे तो फिर, न अभावों की शिकायत करनी पड़ेगी और न जिस–तिस प्रकार के व्यवधान सामने आने पर भी अभ्युदय में कोई बाधा पड़ेगी ।

औसत नागरिक स्तर का जीवन स्वीकार कर लेने पर सुविस्तृत खेतों, देहातों में रहा जा सकता है और वायुमंडल, वातावरण को प्रफुल्लता प्रदान करते रहने, संतुष्ट रखने में सहायक हुआ जा सकता है । प्राचीनकाल की सुसंस्कृत पीढ़ी इसी प्रकार रहती थी और मात्र हाथों के सहारे बन पड़ने वाले श्रम से जीवनयापन के सभी आवश्यक साधन सरलतापूर्वक जुटा लेती थी । न प्रदूषण फैलने का कोई प्रश्न था और न शहरों की ओर देहाती प्रतिभा पलायन का कोई संकट । न देहात दरिद्र, सुनसान, पिछड़े रहते थे और न शहर गंदगी, घिचपिच, असामाजिकता के केंद्र बनते थे । आज भी उस पुरातन रीति को अपनाया जा सके, तो जिन समस्याओं के कारण सर्वत्र त्राहि त्राहि मची हुई है, उनके उभरने के कारण शेष न रहें ।

''सादा जीवन उच्च विचार'' का सिद्धांत अपनाते ही प्रस्तुत असंख्य समस्याओं में से एक के भी पैर न टिक सकेंगे । अपराधों की भरमार भी क्यों न हों, जब हर व्यक्ति ईमानदारी, समझदारी और बहादुरी की नीति अपनाकर श्रमशीलता, सभ्यता और सुसंस्कारिता को व्यावहारिक जीवन में स्थान देने लगेगा, तो देखते देखते समस्याओं के रूप में छाया अंधकार मिटता चला जाएगा । गुजारे के

लायक इतने साधन इस संसार में मौजूद हैं कि हर शरीर को रोटी, हर तन को कपड़ा, हर सिर को छाया और हर हाथ को काम मिल सके । तब गरीबी–अमीरी की विषमता भी क्यों रहेगी ? जाति लिंग के नाम पर पनपने वाली विषमता का अनीतिमूलक और दुःखदायी प्रचलन भी क्यों रहेगा ?

मनुष्य स्नेह और सहयोगपूर्वक रहने के लिए पैदा हुआ है । लड़ने, मरने और त्रास देने के लिए नहीं । यदि आपाधापी न मचे, तो फिर एकता और समता में बाधा उत्पन्न करने वाली असंख्य कठिनाइयों में से एक का भी कहीं अस्तित्व दृष्टिगोचर न हो । युद्ध प्रयोजनों में जो संपदा, शक्ति और प्रतिभा का नियोजन हो रहा है, उन सब को यदि बचाया जा सके और उन समूचे साधनों को नव सृजन के प्रयोजनों में लगाया जा सके, तो समझना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी के उज्जवल भविष्य के संबंध में जो कल्पनाएँ की गई हैं वे सभी दस वर्ष के भीतर नए सिरे से नए ढांचे में ढलकर साकार हो जाएंगी ।

बिजली का अतिशय उत्पादन के लिए अब अणु ईंधन को व्यवहार में लाया जाने लगा है । इसकी बढ़ोत्तरी चल पड़े, तो आणविक राख एवं विकिरण का एक नया महादैत्य पैदा हो जाएगा, जिससे जान बचाना मुश्किल पड़ेगा । इसका विकल्प एक ही हो सकता है कि स्थानीय साधनों से छोटे बिजली घर, जनरेटर स्तर के बनाए जाएँ और उनके उत्पादन से एक दो हार्स पावर से चलने वाले छोटे कुटीर उद्योग लगाकर उनके संयुक्त सम्मिश्रण से आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए । इसी प्रकार के उत्पादन का उपयोग करने के लिए हर उपभोक्ता को सहमत किया जाए ।

शासन तंत्र प्रायः ऐसी खर्चीली और कर्तव्य विमुख नौकरशाही के आधार पर चल रहे हैं, जिसके कर्मचारी, मालिकों के भी मालिक बनकर रह रहे हैं । ऐसी दशा में जन कल्याण की वास्तविक व्यवस्था बन पड़ने की आशा तो एक प्रकार से अत्यंत ही क्षीण स्तर की रह जाती है । होना यह चाहिए कि सहकारिता के आधार पर विकेंद्रीकृत

शासन एवं सेवा भावना के आधार पर समूची व्यवस्था का संचालन हो । ऐसा शासन ही आदर्श हो सकता है और उसी के माध्यम से भौतिक एवं आत्मिक प्रगति का समग्र प्रयोजन पूरा हो सकता है ।

समाज के सामने असंख्यों विकृतियों और व्यक्ति के सामने असंख्य समस्याओं के अंबार खड़े हैं । उनमें से प्रत्येक को अलग अलग समस्या मानकर, उनके पृथक् पृथक् समाधान सोचने में यद्यपि विश्व की मूर्धन्य प्रतिभाएँ अपने-अपने ढंग से उपाय खोजने और उपचार खड़े करने के लिए भारी माथा पच्ची कर रही हैं, पर उनसे कुछ बन नहीं पा रहा है । न अस्पतालों, चिकित्सकों, औषधि, आविष्कारों पर असीम धन शक्ति, जनशक्ति लगाने से रोग काबू में आ रहे हैं और न पुलिस, कानून, कचहरी, जेल आदि अपराधों को कम करने में समर्थ हो रहे हैं । गरीबी हटाओ का नारा तो बहुत आकर्षक है, पर वस्तुतः अचिंत्य-चिंतन, दुर्व्यसनों आदि के रहते बैंकों के भारी कर्ज और ढेरों अनुदान बाँटने पर भी समस्या का वास्तविक हल हाथ लग नहीं रहा है । अगले दिनों जनमानस यह देखकर रहेगा कि अगणित समस्याएं उत्पन्न कहाँ से होती हैं ? उस रानी मक्खी को खोजना है, जो आए दिन असंख्यों अण्डे बच्चे जनती है और जिनकी भरण पोषण में छत्तों की समस्त मधुमक्खियों के लगे रहने पर भी समस्याएं जहाँ की तहाँ बनी रहती हैं ।

नवसृजन की चेतना असमर्थ नहीं है

छोटी, सामयिक, स्थानीय एवं वैयक्तिक समस्याओं के उपाय उपचार छोटे रूप में भी सोचे और खोजे जा सकते हैं, पर जब विपन्नताएँ व्यापक हों तो उनसे निपटने के लिए बड़े पैमाने पर व्यापक तैयारियाँ करनी होती हैं । नल का पानी कुछ लोगों की जल आवश्यकता पूरी कर सकता है, किंतु सूखाग्रस्त विशाल भू खंडों का स्थायी समाधान बड़े उपायों से ही बन पड़ता है । भगीरथ ने यही किया था । वे हिमालय में कैद जलराशि को गंगा के रूप में विशाल

क्षेत्र में दौड़ने के लिए कटिबद्ध हो गए । फलस्वरूप उसके प्रभाव में आने वाले क्षेत्र समुचित जल व्यवस्था बन जाने से सुरम्य और समृद्धिशाली बन गए ।

तथाकथित बुद्धिमान और शक्तिशाली इन दिनों की समस्याओं और आवश्यकताओं को तो समझते हैं, पर उपाय खोजते समय यह मान बैठते हैं कि यह संसार मात्र पदार्थों से सजी पंसारी की दुकान भर है । इसकी कुछ चीजें इधर की उधर कर देने, अनुपयुक्त को हटा देने और उपयुक्त को उस स्थान पर जमा देने भर से काम चल जाएगा । समूचे प्रयास इन दिनों इसी दृष्टि से बन और चल रहे हैं । वायु प्रदूषण दूर करने के लिए कोई ऐसी नई गैस खोजने का प्रयत्न हो रहा है, जो हवा के भरते जा रहे विष को चूस लिया करे । खाद्यान्न की पूर्ति के लिए खादों के ऐसे भीमकाय कारखाने खुल रहे हैं, जो एक के दस पौधे उगा दिया करें । पर मूल कारण की ओर ध्यान न जाने से अभाव, असंतोष एवं विग्रह किस प्रकार निरस्त होगा, इसे सोचने की न जाने क्यों किसी को फुरसत नहीं है ।

चोट की मरहम पट्टी की जा सकती है, पर समस्त रक्त में फैले हुए "रक्त कैंसर" को मरहम पट्टी से कैसे ठीक किया जाए ? एक दिन तो कोई किसी को मुफ्त में भी रोटी खिला सकता है, पर आए दिन की आवश्यकताएँ तो हर किसी को अपने बलबूते ही हल करनी पड़ेगी । उसके लिए किसी भी दानवीर के सदावर्त भंडार से सभी लोगों का गुजारा चलता रहे, यह संभव नही ।

व्यक्ति के सामने शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक स्तर की असंख्य समस्याएँ आए दिन नए नए रूप में आती रहती हैं । उन सबसे निपटने के लिए अपनी ही सूझबूझ को इस स्तर तक विकसित करना चाहिए, जिससे आंगन का कूड़ा रोज साफ करते रहने की तरह आवश्यक समाधानों को भी सोचा और अपनाया जा सके ।

वस्तुतः मनुष्य का चिंतन, चरित्र और व्यवहार बुरी तरह गड़बड़ा गया है । उसकी स्थिति तो विक्षिप्तों जैसी हो गई है, उसी से

ऐसे ऊटपटांग काम होने लगे हैं, जिनके कारण अपने और दूसरों के लिए विपत्ति ही विपत्ति उत्पन्न हो गई है । पगलाए हुए व्यक्ति द्वारा की गई तोड़ फोड़ की मरम्मत तो होनी ही चाहिए, पर साथ ही उस उन्माद की रोकथाम भी होनी चाहिए, जिसने भविष्य में भी वैसी ही उद्दंडता करते रहने की आदत अपनाई है ।

मनुष्य को अड़चनों से निपटने के लिए योजना बनानी और तैयारी करनी चाहिए । निराश होने से तो मात्र आशंकाओं का आतंक ही बढ़ेगा । यहाँ यह तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है कि सामान्य जन अपनी निजी समस्याओं को ही किसी प्रकार संभालते, सुधारते रहते हैं, पर व्यापक विपत्ति से मिलजुल कर ही निपटना पड़ता है । बाढ़ आने, महामारी फैलने जैसे अवसरों पर सामूहिक योजनाएँ ही काम देती हैं । पुरातन भाषा में ऐसे ही महत्वपूर्ण परिवर्तन को युग परिवर्तन अथवा अवतार अवतरणों जैसे नामों से पुकारा जाता रहा है । ऐसे तूफानी परिवर्तनों को महाक्रांति भी कहते हैं । क्रांतियाँ प्रतिकूलताओं से निपटने के लिए संघर्ष रूप में उभरती हैं, पर महाक्रांतियों को दूरगामी योजनाएं बनानी पड़ती हैं । अनीति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने के साथ साथ नव सृजन के निर्धारण करने एवं कदम उठाने पड़ते हैं । इस अपने समय में अदृश्य में पक रही खिचड़ी को महाक्रांति के रूप में जाना जाए और युग परिवर्तन कहा जाए, इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य की संरचना जैसा कुछ नाम दिया जाए, तो भी कोई हर्ज नहीं ।

अत्यधिक विशालकाय सुविस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करने वाले ६०० करोड़ मनुष्य के चिंतन को अवांछनीयता से विरत करके वांछनीयता के साथ जोड़ देने वाले कार्य को कोई एक व्यक्ति न कर सकेगा, पर इस तथ्य पर अविश्वास नहीं करना चाहिए । ऐसे अवसर भूतकाल में भी अनेक बार आए हैं । जब मनुष्य निराश होने लगते हैं, तब उनमें नए सिरे से नई हिम्मत भरने के लिए प्रभात काल के अरुणोदय की तरह नए तूफानी प्रवाह उदय होते रहे हैं, जिनके लिए

बड़ी से बड़ी उथल पुथल भी असंभव नहीं होती ।

पूर्णमासी को समुद्र में आने वाले ज्वार भाटे ऐसे लगते हैं, मानों वे प्रशांत सागर को ज्वार भाटों के सहारे आकाश तक उछाल कर रहेंगे । मनुष्य के लिए यह सब कर सकना कठिन हो सकता है, पर उस प्रकृति के लिए तो ऐसी उठक पटक, क्रीड़ा–विनोद मात्र है, जो आए दिन विशालकाय ग्रह पिंड रचने और मिटाने का खेल खिलवाड़ करते रहने में अलमस्त बालक की तरह निरत रहती है । स्रष्टा की सत्ता और क्षमता पर जिन्हें विश्वास है, उन्हें इसी प्रकार सोचना चाहिए कि गंदगी कितनी ही कुरुचिपूर्ण क्यों न हो, वह तूफानी अंधड़ के दबाव और मूसलाधार वर्षा के प्रवाह के सामने टिक नहीं सकेगी । बिगाड़ रचने में मनुष्य ने अपनी क्षुद्रता का परिचय कितना ही क्यों न दिया हो ? पर इस सुंदर भूलोक के नंदन वन का संस्थापक, उसे इस प्रकार वीरान न होने देगा जैसा कि कुचक्री उसको विस्मार कर देने के षड्यंत्र रच रहे हैं । अनाचारियों की करतूतें निश्चय ही रोमांचकारी होती हैं । पर विश्व को संरक्षण देने वाली ऐसी देव सत्ताएं भी सर्वथा निष्क्रिय नहीं, जिनको सृष्टि का संतुलन बनाए रहने का काम सौंपा गया है ।

मृत्यु की विभीषिका आए दिन भयंकर मारकाट मचाती और असख्यों को हर क्षण निष्प्राण करती रहती है । इतने पर भी उसकी चुनौती को सृजन का देवता सदा से स्वीकार करता रहा है । मरने वालों की तुलना में जन्मने वाले सदा अधिक रहे हैं । यदि ऐसा न होता, तो प्राणियों की वृद्धि रुक गई होती और धीरे–धीरे समस्त जीवधारी मर–खप कर कब के समाप्त हो गए होते, जबकि वे निरंतर अपनी वंश वृद्धि ही करते चले आ रहे हैं । यह तथ्य बताते हैं कि निराश और चिंतित करने वाला वातावरण कितना ही निराशाजनक क्यों न हो, विचारशीलों में से एक को भी हिम्मत नहीं हारनी चाहिए । किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मनुष्य मात्र भ्रष्ट चिंतन और भ्रष्ट आचरण पर ही उतारू रहता है । मनुष्यता समय समय पर ऐसी

आश्चर्यजनक करवटें लेती रही है, जिसके अनुसार देव मानवों का नया वसंत, नई कोपलें, नई कलियाँ और नए फल फूलों की संपदा लेकर सभी दिशाओं में अट्टहास करता दीख पड़ता है । महामानवों, देव पुरुषों, मनीषियों, सुधारकों, सृजेताओं का ऐसा उत्पादन होता है, मानों वर्षा ऋतु ने अगणित वनस्पतियों और जीव–जंतुओं की नई फसल उगाने की सौगंध खाई हो । अगले ही दिनों नए सृजेताओं की एक नई पीढ़ी हम में से ही विकसित होगी जिसके सामने अब तक के सभी संतों, सुधारकों और शहीदों के पुरुषार्थ छोटे पड़ जाएंगे ।

देवमानवों का अवतरण

इतने कामों को करेगा कौन ? होंगे कैसे ? नरक को स्वर्ग में उलट देने की प्रक्रिया का आखिर माध्यम क्या होगा ? उस योजना के क्रियान्वित होने की विधि–व्यवस्था किस प्रकार बन पड़ेगी ? ऐसे अनेकों असमंजस भरे प्रश्न इन दिनों असंख्यों के मन में उठ रहे होंगे । उठने स्वाभाविक भी हैं, क्योंकि विशाल पर्वत जैसे टीले और समुद्र जैसे गहरे खंदक को समतल बना देने की बात सचमुच ही आश्चर्यजनक है । कई बार तो वैसा बन पड़ने का विश्वास तक नहीं होता, पर आस्थावानों को अविश्वास करने का कोई कारण नहीं । संव्याप्त अंधकार की गहरी और लंबी निशा में जब हाथ को हाथ नहीं सूझते, पलट कर सो जाने के अतिरिक्त और कुछ समझ में नहीं आता, तब न जाने क्या आश्चर्य होता है कि ब्रह्ममुहूर्त, उषाकाल और अरुणोदय का सिलसिला आरंभ होकर दोपहर के तपते दिनमान में बदल जाता है । इसे कहते हैं–असंभव का संभव होना । जब ऐसे ही अगणित चमत्कार इस सृष्टि में आए दिन होते हम देखते हैं, तो किसी को प्रतिकूलताओं को उलट कर अनुकूलता में बदल जाने पर क्यों आश्चर्य करना चाहिए ? बाल की नोंक से भी छोटा शुक्राणु जब कुछ ही दिनों में हंसता खेलता शिशु और फिर बाद में पराक्रमी प्रौढ़ बन सकता है तो उपयोगी परिवर्तन की बात पर किसी को क्यों अविश्वास

करना चाहिए ?

युग बदलते ही रहे हैं । पिछला सतयुग यदि आलसी निद्रा से विरत होकर फिर अपना कारोबार संभाल ले, तो उसमें असंभव–संभव जैसी निरर्थक ऊहापोह क्यों करनी चाहिए ? मनुष्य के लिए तो एक चींटी उत्पन्न करना तक असंभव है, पर भगवान इसी अपने धरातल पर क्षण–क्षण में कोटि–कोटि संख्या में चित्र–विचित्र आकृति–प्रकृति के प्राणी उत्पन्न करता रहता है । आस्तिकों को तो कम से कम यह तथ्य भूलना ही नहीं चाहिए । वर्तमान युग परिवर्तन किसी व्यक्ति विशेष की योजना नहीं है । इसके पीछे महाकाल का दुर्धर्ष संकल्प काम कर रहा है । प्रकृति ने नई संरचना के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना आरंभ कर दिया है । इस दिव्य दर्शन को जो आँखें समय रहते देख सकें, उन्हें बड़भागी ही कहा जाएगा और जो समय की चुनौती स्वीकार करने में अपने पैर आगे बढ़ा सकें उनके लिए तो अंगद–हनुमान, नल–नील जैसी उपमा देने से कम में बात बनती ही नहीं ।

इन्हीं दिनों एक प्रचण्ड शक्तिशाली जाज्वल्यमान तारक प्रकट हो रहा है, जिसकी लपलपाती लपटें संसार भर के जीवंत और संवेदनशील मनुष्यों को झकझोर कर खड़े करेगी और कार्य क्षेत्र में उतारने के लिए बाधित करेगी । यह देव–समुदाय देखने में भले ही रीछ–वानरों जैसा हो, पर पुरुषार्थ ऐसा करेगा, जिसे असंभव को संभव बनाने जैसा माना जा सके । ईश्वर–विश्वासी जानते हैं कि भगवान का अनुग्रह जहाँ साथ हैं, वहाँ असंभव जैसी कोई चीज शेष नहीं रह जाती ।

जब आवेश की ऋतु आती है तो जटायु जैसा जीर्ण–शीर्ण भी रावण जैसे महायोद्धा के साथ निर्भय होकर लड़ पड़ता है । गिलहरी श्रद्धामय श्रमदान देने लगती है और सर्वथा निर्धन शबरी अपने संचित बेरों को देने के लिए भाव विभोर होती है । सुदामा को भी तो अपनी चावल की पोटली समर्पित करने में संकोच बाधक नहीं हुआ था ।

यह अदृश्य में लहराता दैव प्रवाह है, जो नव सृजन के देवता की झोली में समयदान, अंशदान ही नहीं, अधिक साहस जुटाकर हरिश्चंद्र की तरह अपना राजपाट और निज का, स्त्री बच्चों का, शरीर तक बेचने में आगा–पीछा नहीं सोचता । दैवी आवेश जिस पर भी आता है, उसे बढ़–चढ़ कर आदर्शों के लिए समर्पण कर गुजरे बिना चैन ही नहीं पड़ता ।

यही है महाकाल की वह अदृश्य अग्नि शिखा, जो चर्मचक्षुओं से तो नहीं देखी जा सकती हैं, पर हर जीवंत व्यक्ति से समय की पुकार कुछ महत्वपूर्ण पुरुषार्थ कराए बिना छोड़ने वाली नहीं है । ऐसे लोगों का समुदाय जब मिलजुलकर अवांछनीयताओं के विरुद्ध निर्णायक युद्ध छेड़ेगा और विश्वकर्मा की तरह नई दुनिया बनाकर खड़ी करेगा, तो अंधे भी देखेंगे कि कोई चमत्कार हुआ । पतन के गर्त में तेजी से गिरने वाला वातावरण किसी वेधशाला से छोड़े गए उपग्रह की तरह ऊँचा उठ कर अपनी नियत कक्षा में द्रुतगति से परिभ्रमण करने लगेगा ।

अपने युग का अवतार हर किसी को दो संदेश सुनाएगा, एक आत्म परिष्कार और दूसरा सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन । ध्वंस और सृजन की यह दुहरी प्रक्रिया इन्हीं दिनों तेजी से चलेगी और निरर्थक टीलों को गिराती, भयंकर खड्डों को पाटती हुई सब कुछ समतल करती चली जाएगी, ऐसा समतल जिस पर नंदनवन और चंदनवन जैसे अगणित उद्यान लगाए जा सकें ।

अंतरिक्ष से धरती पर उतरने वाली युग चेतना गंगावतरण की तरह धरती पर गिरेगी, मत्स्यावतार को पीछे छोड़ देने वाली गति से आगे बढ़ेगी । उसका कार्यक्षेत्र असीम होगा । जल, थल और नभ की समूची परिधि उसकी पकड़ में होगी ।

फिर होगा क्या ? उत्तर एक ही है–विचार परिवर्तन करुणा से ओत–प्रोत भावसंवेदना, व्यक्तियों में संयम और कार्यक्रम में आदर्शवादी पराक्रम । बस इतने भर नवगठन से अपनी दुनिया का काम चल जाएगा । उससे वे सभी समस्याएँ, जो इन दिनों सुरसा,

सिंहिका, ताड़का और सूर्पणखा जैसी विकरालता धारण किए हुए हैं, अपना अस्तित्व गँवाती चली जाएँगी । फिर सृजन, अभ्युदय, उत्थान ने तो निश्चय किया है कि साधनों के अभाव वाले सतयुग की तुलना में आज अपेक्षाकृत अधिक साधन संपन्न और बुद्धि कौशल प्राप्त होने के कारण वह मात्र सतयुग की पुनरावृत्ति न करेगा, वरन् धरती पर स्वर्ग उतार कर रहेगा ।

दुर्गावतरण की पुरानी कथा का अब नया संस्करण नई सजधज के साथ नए सिरे से नए रूप में प्रकट होने के लिए सहमत ही नहीं, उतारू भी हो गया है । देवमानव अपनी संयुक्त शक्ति को पहली बार संगठित करेंगे । उन्हें अनुभव हो गया है कि पिछले दिनों उनने ज्ञान, कर्म और भक्ति की साधना तो की, पर यह भूल गए कि उन्हें संगठित शक्ति का अभिनव जागरण करना चाहिए और जहाँ तक उनका प्रभाव पहुँचे, वहाँ उन्हें उच्चस्तरीय आलोक का मुक्त हस्त से विस्तार करना चाहिए । उनने अपनी पिछली भूलों को सुधारने का निश्चय किया है और कार्यक्रम बनाया है कि जिन भी मनुष्यों में जीवट पाया जाएगा, उन सभी में देवत्व का उदय किए बिना वे चैन से नहीं बैठेंगे ।

लगता है, विश्व चेतना ने अपनी रीति नीति और दिशाधारा में उज्ज्वल भविष्य की संरचना कर सकने वाले सभी तथ्यों का परिपूर्ण समावेश कर लिया है । उसी का उद्घोष दसों–दिशाओं में गूंज रहा है, उसी की लालिमा का आभास अंतरिक्ष के हर प्रकोष्ट में परिलक्षित हो रहा है । न जाने किसका पांचजन्य बज रहा है और एक ही ध्वनि निःसृत कर रहा है–बदलाव–बदलाव बदलाव, उच्चस्तरीय बदलाव, समग्र बदलाव । यही होगी अगले समय की प्रकृति और नियति । मनुष्यों में से जिनमें भी मनुष्यता जीवित होगी, वे यही सोचेंगे–यही करेंगे । उसकी परिवर्तन–प्रक्रिया अपने आप से आरंभ होगी और परिवार–परिकर को प्रभावित करती हुई समूचे समाज को महाकाल के अभिनव निर्धारण से अवगत और अनुप्राणित करेगी ।

विद्या बनाम शिक्षा

जीवनयापन के लिए अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है । अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं । आए दिन समस्याएँ सुलझानी पड़ती हैं । इतने पर भी प्राथमिकता देने योग्य एक ही तत्व है—सांस चलना, प्राण बचे रहना । यदि उसका प्रबंध न हो सके तो समझना चाहिए, अब तब में जीवन का अंत ही होने वाला है । घुटन के बीच भला कोई कितने समय जीवित रह पाएगा ?

लगता तो यही है कि व्यक्ति, समाज और संसार के सामने अगणित समस्याएं मुँह बाए खड़ी हैं और सर्वग्राही चुनौती बन रही है । सघन अंधकार में प्रकाश की किरण कहीं से फूटती नहीं । न विज्ञान कोई समुचित उत्तर दे पाता है और न बुद्धिमानों की विलक्षण बुद्धिमत्ता ही काम आती है ।

अपराधों का बढ़ना, जनसंख्या का दिन दूना रात चौगुना होता विस्तार, शारीरिक और मानसिक रोगों का अंधड़, हर जगह विषाक्तता बिखेरता प्रदूषण, दरिद्रता और निरक्षरता जैसे अनेकों कारण हैं जो त्रास संताप के आधार बने हुए हैं । राजनीति क्षेत्र से भी निराशा ही हाथ लगती है, अराजकता ही नंगा नाच करती है । धर्म प्रचारकों, पुरोहितों ने कभी सतयुग का मेरुदण्ड बनकर अपनी गरिमा जतायी थी, पर अब तो वहाँ भी वंश और वेश ही अपनी जय—जय कार करा रहा है । कर्तव्यों को पीछे धकेल दिया गया और अधिकारों को चौगुना—सौगुना कहकर जताया जा रहा है और भी न जाने कहाँ—कहाँ, क्या—क्या अनर्थ हो रहा है ? पर यह सूझ नहीं पड़ता कि इनका निराकरण कौन करेगा ? कैसे करेगा ?

यह तथ्य हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि मानवी चेतना के विभ्रम और व्यामोह—ग्रस्त हो जाने से ही सब कुछ उलट—पुलट हो गया है । सोचने, करने और प्रचलन में उतरने की बात मात्र एक ही है कि मानवी गरिमा को भुला न दिया

जाए । संकीर्ण स्वार्थपरता को सीमित कैसे रखा जाए ? सहकारिता, उदारता, जन–जन को प्रिय लगे और उसके लिए उत्साह उभरे । तात्कालिक लाभ को इतना महत्व न मिले कि उसकी आतुरता के आगे दूरदर्शी विवेकशीलता के पैर न टिक सकें । पूर्वाग्रह इतने हठी न हों, जो स्वतंत्र चिंतन के लिए कहीं कोई गुँजाइश ही न रहने दें । यदि इस स्तर का मानसिक संतुलन बिठाया जा सके तो मनुष्य के पास इन दिनों भी इतनी समझ, संपदा और दक्षता मौजूद है, जिसके सहारे विनाश को विकास में बदला जा सके ।

इसी स्तर की प्रखर प्रतिभा अगले दिनों इस प्रकार घनघोर रूप से बरसने वाली है कि उसके प्रभाव से सभी प्रभावित होंगे, सही समाधान सोचने और सही कदम उठाने लगेंगे । व्यक्तित्वों में देवत्व का अनुपात बढ़ेगा, तो कोई कारण नहीं कि अपनी इसी धरती पर स्वर्गोपम–वातावरण, सतयुगी सुख–शांति का अभिनव सृजन करता दिखाई न पड़े ।

दंत कथा है कि दो सहेलियां थीं–एक विद्या दूसरी शिक्षा । विद्या राजकुमारी थी और शिक्षा नौकरानी । दोनों की शक्ल सूरत मिलती जुलती थी । एक दिन दोनों वन सरोवर में नहाने गईं । कपड़े उतारकर किनारे पर रख गईं । नहाते समय शिक्षा को सूझा कि मेरे लिए यही अवसर है कि राजकुमारी बन बैठूँ ।

शिक्षा उतावली में निकली और राजकुमारी के कपड़े पहन कर राजमहल जा पहुँची । उसने लोगों को यह भी बता दिया कि राजकुमारी डूबकर मर गई है । उसे चुड़ैल की योनि मिली है । अब जहाँ तहाँ छिप कर बैठी रहती है और किसी परिचित को पहचान लेती है तो उस पर हमला करने से नहीं चूकती । लोगों ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया । षड्यंत्र सफल हो गया । राजकुमारी नंगी कैसे–कहाँ जाती ? लाज बचाने के लिए वह तब से लेकर अब तक जंगलों में भटकती, किसी प्रकार कहीं लुक छिपकर जीवनयापन कर रही है ।

विद्या को अमृतवर्षिणी कहा गया है और शिक्षा अन्नपूर्णा कहलाती है । स्कूलों–कालेजों में जो पढ़ा–पढ़ाया जाता है, उसका प्रमुख प्रयोजन अधिक पैसा कमा सकने की दक्षता बढ़ा लेना भर है । विद्या का उद्देश्य और प्रतिफल भिन्न है । वह व्यक्तित्व को उभारती, प्रतिभा को जगाती, दृष्टिकोण को उत्कृष्टता से जोड़ती और अंतःकरण को आत्मीयता एवं उदारता से लबालब भरती है । इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि लोगों ने विद्या का–संजीवनी विद्या का महत्त्व भुला दिया एवं उसे अनावश्यक ठहराकर उपेक्षित एवं तिरस्कृत बना दिया है । यही वह मूलभूत कारण है जिसने इस सुंदर संसार को बुरी तरह दीन हीन एवं अपराधी प्रवृत्ति का बना दिया है । परिणाम जो अवश्यंभावी था, यह विश्व विनाश के रूप में सामने प्रस्तुत भी है ।

महापरिवर्तन जब भी कभी आरंभ होगा, तब उसका स्वरूप एक ही होगा कि विद्या को जीवित जागृत किया जाए । उसके प्रचार विस्तार का इतना प्रचंड प्रयास किया जाए कि लंबे समय से छाए हुए कुहासे को हटाया जा सके और उस प्रकाश को उभारा जाए, जो हर वस्तु का यथार्थ स्वरूप दिखाता और किस का, किस प्रकार सहयोग होना चाहिए–यह सिखाता है ।

प्राचीनकाल में साक्षरता का, भाषा और लिपि का महत्व तो सभी समझते थे और उसे पुरोहित–यजमान मिल जुल कर हर जगह सुचारु रूप से पूरा कर लेते थे । पुरोहितों की आजीविका हेतु शिक्षार्थियों के अभिभावक दान–दक्षिणा के रूप में जो दे दिया करते थे, वही अपरिग्रही, मितव्ययी जीवन जीने वाले ब्राह्मणों के लिए पर्याप्त होती थी । शिक्षा साक्षरता के लिए कोई विशेष योजना या व्यवस्था नहीं बनानी पड़ती थी ।

संजीवनी विद्या का दायित्व ऋषि वर्ग के मनीषी उठाते थे । जो अधिकारी होते थे, उन्हें अपने आश्रमों, गुरुकुलों, आरण्यकों में बुलाते थे । उपयुक्त वातावरण में उपयुक्त अभ्युदय की समुचित योजना चलाते थे ।

बालकों का जो साक्षरता स्तर का प्रशिक्षण चलता था, उसके लिए गाँव–गाँव छोटे बड़े देवालय बना लिए जाते थे । उपयुक्त स्तर के शिक्षार्थियों के लिए वहीं श्रद्धांसिक्त वातावरण में पढ़ाई पूरी हो जाती थी । तब शिक्षा और आजीविका का कोई सीधा संबंध नहीं था । पढ़ाई जानकारी बढ़ाने के लिए होती थी और कमाई के लिए कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग, क्रय–विक्रय जैसे कौशल काम आते थे । शिल्प–कला जैसे क्रियाकलाप भी इसी क्षेत्र में सम्मिलित रहते थे । इसलिए पढ़ाई के लिए सामान्य स्तर का प्रयत्न किशोरावस्था तक पूरा हो जाता था । उदरपूर्ति–आजीविका के लिए तरुण स्तर के लोग अपनी योग्यता एवं आवश्यकता के अनुरूप ही काम धंधे खोज लेते थे ।

विद्या का, प्रज्ञा का युग इन्हीं दिनों तूफानी गति से बढ़ता चला आ रहा है । उसका लक्ष्य निश्चित और निर्धारित है । हर मस्तिष्क में नए सिरे से नई हलचल उत्पन्न करना । अपनाई हुई मान्यताएँ, धारणाएँ कितनी ही पुरातन या अभ्यस्त हों, वह उन्हें उखाड़ कर ही रहेगा । साथ वह दूरदर्शी विवेकशीलता की ऐसी वर्षा करेगा, जिसके प्रभाव से औचित्य का ही सर्वत्र स्वागत किया जाएगा । विवेक और औचित्य के दो आधार ही नवयुग की स्थापना करेंगे । हर कोई उन्हीं को स्वीकार, अंगीकार करेगा, भले ही उन्हें समय की अनिवार्य आवश्यकता ने नए सिरे से ही प्रतिपादित क्यों न किया हो ?

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा